भारतीय ज्ञान धरोहर
विमर्श और परंपरा

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परम्परा

सम्पादक

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2023

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 69 - 1

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान धरोहर : विमर्श और परम्परा

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

27

महाकाव्यों में राजनीतिक प्रशासन

कमलेश कुमार अटल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति के दो ऐसे महाकाव्य हैं जिन्हें भारतीय जीवन-दर्शन, संस्कृति, परम्पराओं और आदर्शों का प्रत्यक्ष दर्पण माना जाता है। भारतीय समाज के नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक मूल्यों का जो रूप आज दिखाई देता है, उसकी नींव बहुत हद तक इन्हीं दोनों ग्रंथों से पड़ी है। इसीलिए इन्हें भारतीय संस्कृति के गौरव-ग्रंथ कहा जाता है। इन दोनों काव्यों की महानता इस बात में भी निहित है कि बाद के युगों में रचित अधिकांश साहित्य ने इनके कथानकों, पात्रों, शैली-वैशिष्ट्य और छन्द-रूपों से प्रेरणा प्राप्त की। विशेष रूप से रामायण के लेखक महर्षि वाल्मीकि की काव्य-शैली, सौन्दर्य-संवेदना और अलंकार-निपुणता ने कालिदास जैसे कवियों के लिए एक सुकोमल और परिमार्जित काव्य-पथ बनाया, जिसे संस्कृत साहित्य ने अपने उच्चतम स्तर की परंपरा के रूप में आत्मसात किया।

इन महाकाव्यों में रामायण अधिक प्राचीन मानी जाती है। महाभारत में रामोपाख्यान की उपस्थिति और वाल्मीकि के नाम का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि महाभारत के रचयिता व्यास रामायण और उसके रचयिता से परिचित थे। इसके विपरीत रामायण में न तो महाभारत का उल्लेख है, न ही व्यास का। महाभारत की कोई घटना, कोई पात्र, या कोई प्रसंग रामायण में नहीं मिलता। यह अंतर स्वयं इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि रामायण पहले रची गई और महाभारत उसके पश्चात विकसित हुआ। भौगोलिक दृष्टि से भी रामायण में वर्णित भारतवर्ष का स्वरूप अत्यंत सीमित और प्राचीन है, जबकि महाभारत में भूगोल अधिक विस्तृत और विकसित प्रतीत होता है। यह भौगोलिक परिवर्तन भी दोनों की कालगत दूरी को दर्शाता है।

पाश्चात्य विद्वान वेबर ने यह मत प्रस्तुत किया था कि रामायण बौद्धकाल के पश्चात रची गई और वह बौद्ध कथा-परंपरा पर आधारित है। किंतु यह मत अनेक ऐतिहासिक, भाषिक और साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर असंगत सिद्ध होता है। रामायण के लेखक को न बुद्ध के जीवन के बारे में कोई जानकारी प्रतीत होती है,

न बौद्ध धर्म की शिक्षाओं या उनके सामाजिक प्रभाव का कोई संकेत मिलता है। इतना ही नहीं, बुद्धकाल का प्रमुख नगर पाटलिपुत्र रामायण में कहीं उल्लेखित नहीं हुआ है। बौद्ध और जैन ग्रंथों में कोशल की राजधानी को 'साकेत' कहा गया है, जबकि रामायण में यह नाम अनुपस्थित है और वहाँ नगर का नाम केवल 'अयोध्या' मिलता है। यह तथ्य भी दर्शाता है कि रामायण की रचना बौद्ध प्रभाव से पूर्व, अधिक प्राचीन समय में हुई।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध जातक कथाओं में मिलने वाला दशरथ जातक राम-लक्ष्मण-सीता की कथा का उल्लेख करता है। जातक ग्रंथ बौद्धकाल के आसपास या उसके बाद लिखे गए माने जाते हैं, इसलिए इन कथाओं का वहाँ पाया जाना यह प्रमाण देता है कि रामकथा पहले से प्रचलित थी और रामायण का काव्यरूप भी उससे पहले बन चुका था। भाषा और शैली के आधार पर भी यूरोपीय विद्वान जैकोबी ने निष्कर्ष निकाला कि रामायण की भाषा अधिक पुरानी और सरल संरचना वाली है, जो महाभारत से पहले की प्रतीत होती है। अंग्रेज विद्वान मैकडोनाल्ड भी इसी आधार पर इसका रचनाकाल लगभग 500 ईसा पूर्व मानते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में राजनीति और राज्य-व्यवस्था से संबन्धित विचारों को व्यक्त करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। जहाँ सामान्य रूप से 'दण्डनीति' शब्द राजनीति विज्ञान और प्रशासनिक प्रक्रिया का द्योतक माना गया है, वहीं राजनीति, राजधर्म, राजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि अनेक नाम भी इसी ज्ञान-परंपरा को निरूपित करते हैं। प्राचीन काल में इन शास्त्रों का मूल उद्देश्य राज्य की संरचना, शासन-व्यवस्था, राजा के कार्य, प्रजा की भूमिका, दण्ड और नीति के सिद्धान्तों को विधि और विवेकपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना था।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र भले ही नाम से अर्थ और अर्थनीति की ओर संकेत करता हो, परंतु वस्तुतः यह सम्पत्ति-व्यवस्था का मात्र ग्रन्थ न होकर एक व्यापक राजनीतिक और प्रशासनिक ग्रंथ है, जिसमें शासन, सुरक्षा, विदेशनीति, न्याय व्यवस्था और जनकल्याण तक के नियमों का विस्तृत प्रतिपादन मिलता है। कौटिल्य ने 'अर्थ' शब्द की जो परिभाषा दी है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है—उनके अनुसार मनुष्यों द्वारा आबाद भूमि 'अर्थ' कहलाती है, और इस भूमि के लाभ एवं पालन से संबंधित जो भी शास्त्रीय व्यवस्था है, वही 'अर्थशास्त्र' है।

कौटिल्य की इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि 'अर्थ' की अवधारणा वस्तुतः 'राज्य' की ही मूल इकाई को दर्शाती है, क्योंकि राज्य के तीन प्रमुख तत्व माने गए हैं—भूमि, जनसमुदाय और संगठित शासकीय सत्ता। कौटिल्य की परिभाषा में भूमि

और जनसमुदाय दोनों का समावेश हो गया है, जबकि तीसरा तत्व अर्थात् शासन-सत्ता या दण्ड का रूप प्राचीन राजनीति ग्रंथों में 'दण्ड' शब्द से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र—नाम के भीतर ही राज्य के मूलभूत तत्वों की झलक उपस्थित है।

अपने ग्रंथ के प्रारंभ में कौटिल्य यह लिखते हैं कि पृथ्वी के लाभ और पालन के उद्देश्य से पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा जो-जो अर्थशास्त्र रचे गए, उनका संग्रह और परीक्षण करके ही अपने अर्थशास्त्र की रचना की गई है। यह कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि कौटिल्य अकेले इस परंपरा के प्रवर्तक नहीं थे, बल्कि उनसे पहले अनेक विद्वान राजनीतिक सिद्धांतों और दण्डनीति पर ग्रन्थ रच चुके थे। यही कारण है कि उनके अर्थशास्त्र में इन आचार्यों के विचारों और मतों का बारंबार उल्लेख मिलता है।

कौटिल्य ने जिन आचार्यों के विचार उद्धृत किए हैं, उनके नाम हैं—भारद्वाज, विशालाक्ष, पाराशर, पिशुन, कौणदन्त, वातव्याधि, बाहुदन्तीपुत्र, कणिंक भारद्वाज, कात्यायन, घोटमुख, दीर्घचारायण, पिशुनपुत्र और किन्जलक। ये सभी प्राचीन भारतीय राजनीति शास्त्र की उस विशाल परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें राज्य-व्यवस्था, न्याय, दण्ड और राजधर्म के विविध पक्षों को स्पष्ट किया गया था।

इसी प्रकार महाभारत के शांतिपर्व में भी अनेक प्राचीन नीतिशास्त्रकारों और राजविद्या के प्रवर्तकों के नाम मिलते हैं। इन नामों में विशालाक्ष, इन्द्र, बृहस्पति, अनु, शुक्र, भारद्वाज, गौरशिरा, मातरिश्व, कश्यप, वैश्रवण, उतथ्य, वामदेव, शम्बर, कालकवृक्षीय, वसुहोम और कामन्दक का उल्लेख मिलता है। महाभारत में उल्लिखित इन आचार्यों में से कुछ नाम ऐसे हैं जो कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी समान रूप से उपस्थित हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीति-परंपरा एक दीर्घ काल तक विकसित होती रही थी और कौटिल्य उसके उत्तरकालीन किन्तु अत्यंत व्यवस्थित ग्रंथकार थे।

महाभारत में इन पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों के परिमाण का भी संकेत मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में नीतिशास्त्र कितने विस्तृत और विकसित रूप में विद्यमान था। वहाँ बताया गया है कि विशालाक्ष के नीतिशास्त्र में दस हजार अध्याय थे, इन्द्र के नीतिशास्त्र में पाँच हजार अध्याय और बृहस्पति के अर्थशास्त्र में तीन हजार अध्याय सम्मिलित थे। इन विशाल परिमाणों से यह स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्र और राजनीति विज्ञान का भारतीय परंपरा में कितना गहरा और व्यापक विकास था, और कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने इन विशाल परंपरागत ग्रंथों का सार प्रस्तुत

करते हुए एक सुव्यवस्थित राजनीतिक दर्शन को आकार दिया।

प्राचीन भारतीय साहित्य में महाभारत का महत्व अत्यधिक है। इसे भारतीय ज्ञान, इतिहास, सामाजिक जीवन और नैतिक मूल्यों का विश्वकोश कहा जा सकता है। महाभारत के शान्तिपर्व में राजधर्म, शासन, न्याय और राज्य व्यवस्था का विस्तृत विवेचन मिलता है। शान्तिपर्व इतना विशाल है कि वह एक स्वतंत्र ग्रंथ का रूप ले लेता है। इसमें भीष्म द्वारा दिए गए उपदेश गहरे राजनीतिक और नैतिक दर्शन से भरपूर हैं और इनकी तुलना प्लेटो तथा सुकरात के संवादों से भी की जा सकती है। यद्यपि महाभारत का वर्तमान रूप अपेक्षाकृत बाद में व्यवस्थित हुआ, पर इसमें संकलित विचार अत्यंत पुराने तथा प्राचीन राजनीति-परंपरा का द्योतक हैं।

रामायण और महाभारत दोनों सांस्कृतिक महाकाव्य हैं, पर इनमें केवल धर्म-कथा ही नहीं, बल्कि समाज, राजनीति, शासन-व्यवस्था, आचार-सिद्धांत और मानवीय कर्तव्यों के मूल तत्त्व भी स्पष्ट रूप से व्यक्त किए गए हैं। इनके कथानकों में सामाजिक मूल्यों, राजनीतिक संस्थाओं और आदर्श आचरण के सिद्धांतों का व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है। इसलिए ये दोनों महाकाव्य केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के पूर्ण स्रोत भी माने जाते हैं।

रामायण में राज्य की उत्पत्ति का कोई व्यवस्थित सिद्धांत नहीं दिया गया है, परंतु संकेत स्पष्ट है कि राज्य मानव को अराजकता और कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए बनाया गया। राज्य को न तो स्वयंभू माना गया है, न ही उद्देश्यहीन—बल्कि मनुष्य के कल्याण और सुरक्षा के लिए स्थापित संस्था के रूप में स्वीकार किया गया है।

ग्रंथ यह मानता है कि राज्य की सारी वैधता तभी है जब वह धर्म, आदर्शों और प्रजा-कल्याण के प्रति समर्पित रहे। प्रजा आज्ञा पालन तब ही करती है जब शासक धर्मसम्मत, न्यायपूर्ण और जनहितकारी व्यवहार करे।

रामायण में शासक की शक्तियाँ व्यापक बताई गई हैं, लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट है कि राजा इन शक्तियों का दुरुपयोग नहीं कर सकता। न्याय, विवेक और मयादज़ में रहकर शक्ति का प्रयोग ही राज्य और शासक—दोनों के अस्तित्व को सार्थक बनाता है।

रामायण में शासन व्यवस्था और राजनीतिक चेतना का अत्यंत महत्वपूर्ण चित्र मिलता है। यहाँ प्रजा केवल शासक की आज्ञा मानने वाली निष्क्रिय जनता नहीं, बल्कि शासन की गतिविधियों पर सतर्क निगाह रखने वाली जागरूक सामाजिक शक्ति के रूप में दिखाई देती है। राम के वनवास, भरत का राम को पुनः बुलाने का प्रयास

— इन सभी प्रसंगों में जनता ने स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए और शासकीय निर्णयों को प्रभावित करने का प्रयास भी किया। इससे यह सिद्ध होता है कि रामायण के समय में शासन-प्रजा संबंध परस्पर संवाद और उत्तरदायित्व पर आधारित थे।

ग्रंथ में प्रशासन की संगठित व्यवस्था का उल्लेख अवश्य मिलता है, किंतु इसकी विस्तृत संरचना—जैसे विभागीय संगठन, पदाधिकारियों के विशिष्ट कार्यक्षेत्र और प्रक्रियात्मक ढाँचे को केवल संकेत रूप में प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि कार्य-आधारित दायित्वों के अनुसार पद स्थापित थे और प्रशासन एक सुव्यवस्थित व्यवस्था में संचालित होता था।

रामायण में न्याय को शासन की मूल जिम्मेदारी माना गया है। न्यायिक शक्ति को शासक की निजी इच्छा नहीं, बल्कि विधिसंगत संस्थागत अधिकार के रूप में देखा गया है। इसीलिए स्वयं राजा भी विधि के अधीन है। यह विचार विधि-शासन की अत्यंत प्राचीन और सशक्त अभिव्यक्ति है।

न्यायिक प्रक्रिया में वादी, प्रतिवादी और साक्षी—तीनों के अधिकारों की रक्षा आवश्यक मानी गई है, जिससे निष्पक्ष न्याय की परिकल्पना सामने आती है। ग्रंथ में अपराधों का तार्किक एवं व्यावहारिक वर्गीकरण मिलता है और दंड की मात्रा अपराध की गंभीरता के अनुरूप निर्धारित करने पर बल दिया गया है।

रामायण में राजनीतिक प्रशासन का सबसे विशिष्ट पक्ष यह है कि राज्य को केवल शक्ति और अधिकार की संस्था न मानकर लोकक्ल्याण के लिए अस्तित्व में आई व्यवस्था के रूप में देखा गया है। इस व्यवस्था में जनता की सक्रिय भागीदारी को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। प्रजा से यह अपेक्षा की गई है कि वह सदैव जागरूक रहे, शासन की नीतियों और शासक के आचरण की निरपेक्ष समीक्षा करे और आवश्यक होने पर अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट करे। इस प्रकार रामायण में राज्य और प्रजा के बीच द्विपक्षीय संवाद, विश्वास और उत्तरदायित्व की समन्वित राजनीतिक दृष्टि दिखाई देती है।

महाभारत भी सांस्कृतिक महाकाव्य है, पर इसकी कथा-संरचना मुख्यत: राजनीतिक है। इसका केंद्र कौरव-पाण्डव संघर्ष है, जो राजनीतिक सत्ता, उत्तराधिकार, शासन-दृष्टिकोण और अधिकारों को लेकर उत्पन्न विवादों से विकसित हुआ। यहाँ अनेक प्रसंगों और उपकथाओं में सत्ता के लिए संघर्ष, शासन की समस्याएँ और राजनैतिक जटिलताओं का विस्तृत चित्रण मिलता है। इस कारण महाभारत केवल धार्मिक या सांस्कृतिक ग्रंथ न होकर एक गहन राजनीतिक और दार्शनिक दस्तावेज भी बन जाता है।

राजनीतिक विचारों की दृष्टि से भी रामायण और महाभारत में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। रामायण का नायक राम धर्म, मर्यादा, आदर्श और मूल्यों के पालन का प्रतिरूप है। रावण का संघर्ष भी राम के साथ व्यक्तिगत अनादर पर आधारित नहीं, बल्कि दो भिन्न मूल्य-प्रणालियों के टकराव का परिणाम है।

इसके विपरीत, महाभारत में संघर्ष दो विभिन्न मूल्य-प्रणालियों का नहीं, बल्कि एक ही मूल्य-व्यवस्था को जानने वाले, एक ही परंपरा में पले पात्रों के बीच उस व्यवस्था के पालन की क्षमता और निष्ठा में अंतर के कारण उत्पन्न होता है। पाण्डव और कौरव दोनों समान सांस्कृतिक-नैतिक विरासत से आते हैं, पर उनके आचरण और मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता में अंतर ही संघर्ष का मूल कारण बनता है।

महाभारत में शासन की शक्ति के मर्यादित और संतुलित उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। ग्रंथ यह स्पष्ट करता है कि शासक को अनियंत्रित शक्ति नहीं मिलनी चाहिए, इसलिए उसके आचरण पर नैतिक, तात्त्विक (धार्मिक/धर्माधारित) और संस्थागत—तीनों प्रकार के नियंत्रण समान रूप से आवश्यक हैं। यह शासन को दुरुपयोग से बचाता है और जनता के हित को सर्वोपरि रखता है।

मंत्रिपरिषद की संस्था महाभारत में अत्यंत विकसित रूप में दिखाई देती है। वहाँ मंत्रिपरिषद के संगठन, संरचना और सदस्यों के चयन संबंधी विस्तृत निर्देश मिलते हैं। ग्रंथ इस बात पर विशेष बल देता है कि मंत्रिपरिषद में समाज के सभी वर्गों का उपयुक्त प्रतिनिधित्व हो। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और यहाँ तक कि सूत जाति के सदस्य तक मंत्रिपरिषद में शामिल किए जाने चाहिए—यह उस समय के लिए अत्यंत प्रगतिशील विचार था।

ग्रंथ में एक 37 सदस्यीय मंत्रिमंडल- की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है- ब्राह्मण-4, क्षत्रिय-8, वैश्य-21, शूद्र-3, सूत-1। हालाँकि इस वर्गानुपात का आधार ग्रंथ में नहीं बताया गया, लेकिन इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि महाभारत समाज के विविध वर्गों को प्रशासन में सम्मिलित करने की प्रबल पक्षधरता रखता है।

मंत्रियों की योग्यताओं और गुणों की भी एक लंबी सूची महाभारत में दी गई है। राजा को सलाह दी गई है कि वह अत्यंत विश्वस्त और योग्य मंत्रियों को ही चुनें। गोपनीयता बनाए रखने के लिए कहा गया है कि राजा एक समय में केवल छह मंत्रियों के साथ ही मंत्रणा करे और ऐसा स्थल चुने जहाँ कोई गुप्त रूप से सुनने वाला न हो—न आगे, न पीछे, न ऊपर, न नीचे।

आश्रम पर्व की सलाह के अनुसार राजा को निर्जन और शांत स्थान में मंत्रणा करनी चाहिए, लेकिन रात के समय कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए क्योंकि

रात्रि को लिया गया निर्णय अस्थिर, जल्दबाजी भरा और त्रुटिपूर्ण हो सकता है।

महाभारत में राज्य व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण संकेत उस प्रसंग में मिलता है जहाँ राजा पौर-जनपद के प्रतिनिधियों के सम्मुख धन-संग्रह की आवश्यकता प्रस्तुत करता है। यह माँग सामान्य नागरिकों से नहीं, बल्कि संगठित, उत्तरदायी, प्रशासनिक रूप से पहचान रखने वाले पौरों और जनपदों से की जाती है—जिनमें से कुछ राजा के आश्रित (उपाश्रित) थे और कुछ उसके साथ गठबंधित (संश्रित)। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में राजकीय कार्यों के लिए संसाधनों की पूर्ति एक प्रशासनिक-सामुदायिक सहभागिता के अंतर्गत होती थी।

महाभारत के शान्तिपर्व में राजधर्म का गहन प्रतिपादन है, जिसमें मंत्रिपरिषद के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। कहा गया है कि राष्ट्र की उन्नति मंत्रणा (काउंसलिंग) पर निर्भर करती है और राजा को योग्य, नीतिज्ञ, सत्यनिष्ठ, बुद्धिमान और राज्य की स्थिति को समझने वाले मंत्रियों का चयन करना चाहिए। साथ ही मंत्रियों की संख्या, योग्यताओं और चयन-प्रक्रिया का भी संकेत मिलता है।

प्राचीन साहित्य में मंत्री, सचिव और अमात्य शब्दों का प्रयोग भिन्न अर्थों में हुआ है। मंत्री और सचिव लगभग पर्यायवाची माने गए तथा अमात्य व्यापक अर्थ में संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र (आज की नौकरशाही की तरह) के लिए प्रयुक्त होता था।

इन विवरणों के आधार पर यह अनुमान मिलता है कि उस समय भी प्रशासनिक ढाँचे में दो स्तर थे— (1) मंत्रिपरिषद, (2) अमात्य वर्ग या सचिवालय। जो आधुनिक कैबिनेट और मंत्रालय प्रणाली से मिलता-जुलता है।

पुरोहित का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण था। रामायण में वशिष्ठ को राजपुरोहित कहा गया है और यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि संकट की स्थिति में पुरोहित ही राजसभा का नेतृत्व कर सकता था। दशरथ की मृत्यु और राम के वनवास की स्थिति में वशिष्ठ ने ही राज्य को संभाला, सभा को संगठित किया, और भरत को बुलाकर राजगद्दी पर प्रतिष्ठित करने की व्यवस्था की—यह पुरोहित की संस्थागत शक्ति का प्रमाण है।

रामायण में प्रशासनिक उच्चाधिकारियों की संख्या 18 बताई गई है, जिससे स्पष्ट है कि राजा के शासन में विभिन्न विभागों का विभाजन और कार्यानुसार दायित्व निर्धारित थे।

राजा के पास एक संगठित चतुरंगिणी सेना थी— (1) पदाति (पैदल सेना), (2) अश्वारोही (घुड़सवार), (3) गजारोही (हाथी वाले सैनिक), (4) रथी (रथ-सैनिक)। राजा स्वयं इसका सर्वोच्च सेनापति था, जिसके हाथ में आंतरिक सुरक्षा

और बाहरी रक्षा—दोनों की जिम्मेदारी रहती थी।

महाकाव्यों में गणतांत्रिक राज्यों का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत में अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकर और भोज—ये पाँच गणराज्य उल्लेखित हैं, जिनके अपने-अपने संगठन और सभा-व्यवस्था थी। यह दर्शाता है कि भारत में राजतंत्र के साथ-साथ गणतंत्रात्मक शासन भी विकसित था।

निष्कर्षतः, रामायण और महाभारत केवल धार्मिक-सांस्कृतिक महाकाव्य नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय समाज, संस्कृति, राज्य-व्यवस्था, न्याय-प्रणाली और राजनीतिक दर्शन के अद्‌भुत एवं प्राचीन स्रोत हैं। इनके कथानकों में निहित मूल्य, नीति, शासन सिद्धांत और लोकज्ञान भारतीय सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक जीवन के आधारस्तंभ हैं।

❖❖❖